|| श्रीहरिः ||
वसुदेवसुतं देवं कंसचाणूरमर्दनम् |
देवकीपरमानन्दं कृष्णं वन्दे जगद्गुरुम् ||

LEARN GEETA
तस्मात् योगी भवार्जुन

गीता परिवार
|| गीता पढ़ें, पढ़ायें, जीवन में लायें ||

|| श्रीमद्भगवद्गीता विवेचन सारांश ||

अध्याय 1: अर्जुनविषादयोग

3/4 (श्लोक 31-39), शनिवार, 09 सितंबर 2023

विवेचक: गीता विदूषी सौ वंदना जी वर्णेकर

यूट्यूब लिंक: https://youtu.be/VVwak9guz7Q

अर्जुन का मोहजनित विषाद

प्रभु चरणों का हृदय में ध्यान करके, मङ्गलमय दीप प्रज्वलन किया गया। माँ शारदा की वन्दना व पूजनीय गुरुदेव का स्मरण करते हुए आज का सत्र प्रारम्भ किया गया।

युद्धभूमि में अपने स्वजनों को सामने देखकर अर्जुन हतोत्साहित हो गए। उनके सामने अधर्म की सेना जिसके मूल कारण धृतराष्ट्र थे, क्योंकि धृतराष्ट्र अपने स्वयं के मन की महत्वाकाङ्क्षा अपने पुत्रों के माध्यम से पूर्ण करना चाह रहे थे। अर्थात् यह सम्पूर्ण राज्य जो वास्तव में पाण्डव व पाण्डव पुत्रों की सम्पत्ति थी, स्वयं अपने अधीन रखना चाहते थे। वर्तमान में हम कई सेवाओं पर या पद पर अयोग्य उत्तराधिकारी का चयन होते देखते हैं। पुत्र चाहे अयोग्य हो, प्रजा या जनता की इच्छा को अनदेखा करते हुए उसे उच्च पद पर आसीन करने का यह चलन पाँच हजार वर्ष पूर्व से चला आ रहा है इसके उदाहरण स्वयं महाराज धृतराष्ट्र हैं। एक अच्छा राजा या शासक वही है जो अपने सम्पूर्ण प्रजा का पालक के रूप में ध्यान रखता है। वह सम्पूर्ण प्रजा या जनता के हितों को सर्वोपरि रखता है, परन्तु यदि राजा धृतराष्ट्र के समान लोभी है तब उसके लिए स्वयं का हित की सबसे महत्वपूर्ण है। यदि हम अधर्म वृक्ष को समझें तो इस अधर्म वृक्ष का मूल है धृतराष्ट्र जिसने अपने मन के संक्रमण से दुर्योधन को प्रभावित किया है। उसे वृक्ष का तना है कर्ण। शाखाएँ हैं शकुनी, पत्र पुष्प आदि हैं दुःशासन व अन्य कौरव पुत्र।

प्रत्युत धर्म के वृक्ष के मूल हैं स्वयं भगवान श्रीकृष्ण, इसके तने हैं अर्जुन, शाखाएँ हैं युधिष्ठिर, भीम, नकुल और सहदेव, व अन्य पाण्डव स्वजन, पुत्र, पौत्र इस वृक्ष के पत्र और पुष्प हैं।

पाँच हजार वर्ष पूर्व कुरुक्षेत्र की युद्धभूमि में होने वाला यह युद्ध वृत्तियों का युद्ध था। यह वृत्तियाँ आज भी मनुष्य में देखी जाती है, अर्थात दुर्योधन, दुःशासन, अर्जुन, धर्मराज युधिष्ठिर वास्तव में वृत्तियों के स्वरूप हैं जो की मनुष्यों में कई हजार वर्षों पूर्व भी देखी जाती थीं और वर्तमान काल में भी विद्यमान हैं। यह वृत्तियां आज वर्तमान काल में भी हर मानव में व्याप्त हैं। मानव में धर्म की प्रवृत्ति अधिक है या अधर्म की, यही उसके जीवन के राह का निर्धारण करती है कि वह धर्म के मार्ग पर अग्रसर होगा या अधर्म के मार्ग को अपनाएगा।

दैनिक रूप से तीन स्तर पर हमारी लड़ाई निरन्तर चलती रहती है पहले है **प्रकृति या सृष्टि** के साथ। घर परिवार में कोई परिजन बीमार है, उसे अस्पताल में दाखिल करना पड़ेगा यह युद्धजन्य स्थिति का उदाहरण है।

कर्मक्षेत्र जिस प्रकार महान विदुषी रानी अहिल्या देवी होलकर जी ने गीता जी के प्रथम श्लोक का उच्चारण सुनते ही यह समझ लिया की कि अपने कर्मक्षेत्र में यदि धर्म का पालन किया जाए तो यही श्रीमद्भगवद्गीता का मूल संदेश है। कर्मक्षेत्र में अपने सहयोगों के साथ संगठन में विभिन्न योजनाओं के कारण विभिन्न विचारों के कारण होने वाले मतभेद के कारण क्षेत्र में भी निरन्तर एक युद्ध चलता रहता है।
तीसरा युद्ध है हमारे विकारों के साथ चलने वाला निरन्तर युद्ध। हमारे विकार अर्थात् काम, क्रोध ,लोभ, मत्सर यह हमारे मन पर निरन्तर प्रबल होते रहते हैं। वह हमारे मुख्य ध्येय से हमें भटकाते रहते हैं। जिससे हमारे भीतर ही एक प्रकार का युद्ध निरन्तर चलता रहता है। **हर व्यक्ति में दो प्रकार की वृत्तियां पाई जाती हैं आसुरी वृत्ति तथा दैवीय वृत्ति।**

श्रीमद्भगवद्गीता के सोलहवें अध्याय में विस्तारपूर्वक प्रभु श्री कृष्ण अर्जुन को समझाते हैं कि यह सम्पूर्ण प्रकृति दो प्रकार की वृत्तियाँ **अर्थात् दैवीय सम्पत्ति व आसुरी सम्पत्ति से अर्थात् अच्छाई व बुराई में विभाजित है। अच्छाई और बुराई का यह संघर्ष निरन्तर चलता रहता है। परिस्थिति चाहे कैसी भी रहे परन्तु मनुष्य के मन में यह दोनों वृत्तियां हमेशा देखी जाती हैं।**

वर्तमान काल में मनुष्य के विकार अर्थात काम, क्रोध, मोह, मद, मत्सर बढ़ते जा रहे हैं। मनुष्य अपने प्रतिकूल प्रवृत्तियां, परिस्थितियों को स्वीकार नहीं कर पाता ऐसे समय में श्रीमद्भगवद्गीता हमें उचित मार्गदर्शन प्रदान करती है। यह हमारे मन को सही दिशा और मनोबल प्रदान करती है। जैसा कि हम जानते हैं **मन के हारे हार है, मन के जीते जीत**। अर्थात् मनुष्य यदि अपनी आत्मविश्वास को प्रबल कर ले तब वह स्थिति पर विजय प्राप्त कर लेता है। प्रतिकूल परिस्थितियों में जब आत्मविश्वास टूटने लगता है तब श्रीमद्भगवद्गीता ही हमारा मार्गदर्शन करती है। जिस प्रकार गुरुदेव कहते हैं कि यह **जीवात्मा को प्रसन्न करने वाला अद्भुत अमूल्य ग्रन्थ जो साक्षात श्री मुख से प्रवाहित होकर हमारे कल्याण के लिए सदैव तत्पर है।**

संत तुकाराम जी कहते हैं-

रात्री दिवस आम्हा युद्धाचा प्रसंग । अंतर्बाह्य जग आणि मन ॥

अर्थात् हमारे मन में सदैव एक युद्ध जैसी परिस्थिति वृत्तियों के निहित होकर चलती रहती है।

महाभारत में समस्त वेदों का सार है, और गीता जी के अमूल्य सारगर्भित सात सौ श्लोकों में सम्पूर्ण महाभारत का सार है। जो हमारे आत्मविश्वास को सदैव एक प्रबल सम्बल प्रदान करता है। हम श्रीमद्भगवद्गीता का अर्थ समझकर सिद्धान्त को ग्रहण करना चाहते हैं अर्थात आत्मतत्व को ग्रहण करना चाहते हैं तो हमें महाभारत के आलोक में रहकर सार ग्रहण करना होगा अन्यथा हम इसका अर्थ सही परिपेक्ष्य में नहीं ग्रहण कर पाएँगे या नहीं प्रस्तुत कर पाएँगे। यह हर आयु, हर वर्ग के मनुष्य के चैतन्य को जागृत करने वाला ग्रन्थ है। कई बार यह ग़लत धारणा पाई जाती है यह वृद्धावस्था में संन्यास आश्रम के लिए प्रेरित करने वाला ग्रन्थ है। जबकि यह शाश्वत अखण्ड सच्चाई है की श्रीमद्भगवद्गीता के वाचक व श्रोता दोनों ही संन्यासी नहीं हैं। प्रभु ने अर्जुन को युद्ध भूमि छोड़ने से रोक कर वास्तव में संन्यास लेने से रोका है। वह अपने परम सखा अर्जुन को समझाते हैं कि यदि तुम इस युद्ध में जीत गए तब तुम्हें सम्पूर्ण भूमि का राज्य प्राप्त होगा, पर यदि तुम इस युद्ध में वीरगति को प्राप्त हुए तब भी तुम्हें स्वर्ग की प्राप्ति होना निश्चित है अर्थात् यदि तुम कर्तव्य पथ पर अडिग रहे तब हर प्रकार से विजय निश्चित। ऐसा प्रबल मनोबल देने वाले इस ग्रन्थ का पठन-पाठन पूर्ण मनोयोग से किया जाना चाहिए। युद्ध भूमि में जब अर्जुन भगवान श्रीकृष्ण से आग्रह करते हैं कि मेरा रथ युद्ध भूमि के मध्य में ले चलिए, वह अपने परम सखा के संवेदनशील स्वभाव को जानते हैं। वह अर्जुन शब्द का शाब्दिक अर्थ है ऋजू अर्थात नम्रता।

पृथापुत्र अर्जुन (जिनमें वीरता और नम्रता दोनों विपरीत गुण, कूट-कूट कर भरे हैं) के रथ को श्रीकृष्ण युद्ध के मैदान के मध्य ले जाकर स्थित कर देते हैं। अपने परम पूज्य पितामह, गुरु द्रोण, व समस्त स्वजनों के बीच जाते ही मधुर वाणी में अर्जुन कहते हैं - हे प्रभु! अपने स्वजनों को सामने देखकर मेरे शरीर के सभी अवयव ढीले होते जा रहे हैं। भुजाएँ शक्तिहीन हो रही हैं। मुख सूखता जा रहा है, संपूर्ण शरीर कम्पायमान हो रहा है। समस्त शरीर के रोम खड़े हो गए हैं। हे कृष्णा! मेरे हाथ से गाण्डीव छूटता जा रहा है, मन भ्रमित हो रहा है सिर चकरा रहा है, अर्थात मैं खड़े रहने में असक्षम अनुभव कर रहा हूँ। जबकि वे सर्वश्रेष्ठ धनुर्धारी अर्जुन हैं जिसने अनेक युद्ध में विजय प्राप्त की। निवात कवच राक्षस पर विजय प्राप्त अर्थात सदैव विजय श्री

प्राप्त करने वाले अर्जुन स्वयं अचम्भित हैं की इस समय वह स्वयं को इतना असहाय, निर्बल क्यों अनुभव कर रहे हैं?

ज्ञानेश्वर महाराज जी ने अर्जुन की इस मनःस्थिति का अत्यंत सुन्दर वर्णन किया है-

जेणें संग्रामीं हरु जिंतिला। निवातकवचांचा ठावो फेडिला।
तो अर्जुन मोहें कवळिला। क्षणामाजीं।
जैसा भ्रमर भेदी कोडें, भलतैसें काष्ठ कोरडें।
परि कळिकेमाजी सांपडे कोमल कोवळिये।।

ज्ञानेश्वर महाराज जी कहते हैं कि वह अर्जुन जिन्होंने संग्राम में स्वयं शिव जी को अर्थात हर को जीता।

प्रसङ्ग :- पशुपतास्त्र के प्राप्ति के लिए वे शिवजी की साधना कर रहे थे। ऐसे समय में शिव जी उनकी परीक्षा लेने के लिए भील के रुप में प्रकट हुए। वहाँ पर एक सूअर आया जो अर्जुन की साधना में विघ्न डालने लगा। तब अर्जुन व भगवान शिव दोनों ने उस पर अपने बाण चलाए। सुअर मर गया, अब प्रश्न यह उत्पन्न हुआ कि भील या अर्जुन किसके बाण से सूअर मारा गया। समाधान हेतु दोनों में बराबरी का युद्ध होने लगा। युद्ध के दौरान संध्या काल में अर्जुन भगवान शिव की आराधना करने गए। जब भी अर्जुन पुष्प शिवलिङ्ग पर अर्पित करते वह पुष्प भील के मस्तक पर चला जाता। अर्जुन भगवान शिव को पहचान कर उनके चरणों में नतमस्तक हो गए। उनसे पशुपतास्त्र प्राप्त किया। इतने सबल अर्जुन भी इस क्षण मोह से ग्रसित हो गए। **ज्ञानेश्वर महाराज जी** कहते हैं कि जिस प्रकार एक भँवरा जो लकड़ी को भेदने में सक्षम है, वह जब पराग के सेवन के लिए कमल पर बैठता है तब संध्या काल में जब कमल की पंखुड़ियां सिमट जाती है अर्थात बन्द हो जाती है तब उन कोमल पंखुड़ियां के मीठे बन्धन को वह नहीं तोड़ पाता। उसी प्रकार एक अनजान व्यक्ति से बन्धन तोड़ना सहज होता है परन्तु अपने स्वजनों से विमुख होना अत्यन्त दुष्कर कार्य है।

तेथ उत्तीर्ण होईल प्राणें । परि तें कमळदळ चिरूं नेणें ।तैसें कठिण कोवळेपणें । स्नेह देखा ॥ २०२ ॥

ज्ञानेश्वर महाराज जी समझाते हैं कि जिस प्रकार मोहवश भ्रमर के लिए अत्यन्त कोमल कमल के पत्तियों को भेद कर बाहर आना कठिन हो जाता है ऐसे ही स्वजनों के सम्बन्धों से जो की बहुत कोमल हैं, से बाहर निकालना अत्यन्त कठिन हो जाता है। अतः अर्जुन इस बन्धन से ग्रसित होने का निम्नलिखित कारण बता कर स्वयं को सही बताने का प्रयास करते हैं।

1.31

निमित्तानि च पश्यामि, विपरीतानि केशव।
न च श्रेयोऽनुपश्यामि, हत्वा स्वजनमाहवे।।1.31।।

।। हे केशव! मैं लक्षणों (शकुनों) को भी विपरीत देख रहा हूँ (और) युद्ध में स्वजनों को मारकर श्रेय (लाभ) भी नहीं देख रहा हूँ।

विवेचन:- अर्जुन श्री कृष्ण से कहते हैं कि हे प्रभु यह जो हम स्वजनों के साथ युद्ध कर के सुख और उपभोग चाहते हैं, यह उचित नहीं है। इस युद्ध में स्वजनों की हत्या करके कुछ भी कल्याणकारी नहीं होगा।
हर मनुष्य के जीवन में दो प्रकार के भाव होते हैं एक होता है श्रेयस् अर्थात कल्याणकारी व प्रेयस् जो प्रिय है। जो बातें प्रिय है वे कल्याणकारी हों यह आवश्यक नहीं होता। जैसे यदि एक मधुमेह के रोगी को मिष्ठान बहुत पसन्द हो सकते हैं। परंतु वह खाना उसके स्वास्थ्य के लिए हितकारी नहीं होता। जीवन में क्या श्रेयस् है? यह मार्गदर्शन हमें अपने ज्येष्ठ श्रेष्ठ, अपने पिता, अपने गुरुओं से पूछना चाहिए कि हमारे लिए क्या कल्याणकारी है? एक मनुष्य जिसने श्रेयस् कार्य को ही अपना प्रिय कार्य बना लिया है वह अपने जीवन के कल्याण मार्ग पर तीव्रता से अग्रसर हो सकता है। उदाहरण के लिए एक विद्यार्थी - परीक्षाओं में उसके लिए सबसे ज्यादा श्रेयस् है पाठ्यक्रम की पढ़ाई करना। यदि यही पढ़ाई वह प्रिय बना लेगा तब सफलता उसके लिए निश्चित है। परंतु यदि वह व्हाट्सएप, अन्य किताबों, टीवी आदि में भटक जाएगा तब उसका कल्याण होना कठिन है।

श्रीमद्भगवद्गीता में अनेक योग हैं। योग का अर्थ होता है जुड़ना अर्थात ईश्वर के साथ जुड़ने का मार्ग योग कहलाता हैं। श्रीमद्भगवद्गीता का सर्वश्रेष्ठ योग है श्रेयस् योग अपने कल्याण के साथ जोड़ने वाली श्रीमद्भगवद्गीता। जब यह कल्याणकारी गीताजी हमें प्रिय लगने लगे तब हम अपना गन्तव्य, अपने ध्येय को प्राप्त कर सकते हैं। हरेक का श्रेयस् मार्ग अलग-अलग होता है इसलिए सम्पूर्ण गीता जी में भगवान ने सारे ज्ञान, भक्ति व सिद्धान्त के वचन कहे हैं। अर्जुन रूपी एक बछड़े को उपनिषद का दोहन कर अमृत पान करवाया है और अर्जुन के माध्यम से यह सारा कल्याणकारी अमृत हमें भी प्राप्त हो रहा है। यहाँ हमारा यह कर्तव्य बनता है कि हम स्वयं के लिए कल्याणकारी वअपने जीवन को श्रेयस् पथ पर किस प्रकार चल सकते हैं। क्या हमारे लिए वास्तविक रूप से कल्याणकारी है यह जानना अत्यन्त आवश्यक है।

एक प्रसङ्ग के माध्यम से उपरोक्त कथन को समझते हैं एक बार प्रजापति ब्रह्मा जी के पास देव मनुष्य और दानव उपदेश प्राप्ति हेतु पहुँचे। ब्रह्मा जी ने मानव, दानव और देवों के लिए द अक्षर का उच्चारण किया। देवताओं के लिए द का अर्थ था दमन मनुष्य के लिए द का अर्थ बताया गया दान और दानव के लिए द का अर्थ था दया का ताकि वह अत्याचार कम सब पर दया रखें। इसी प्रकार हमें श्रीमद्भगवद्गीता से अपना श्रेय प्राप्त करना चाहिए।

1.32

न काङ्क्षे विजयं(ङ्) कृष्ण, न च राज्यं(म्) सुखानि च।
किं(न्) नो राज्येन गोविन्द, किं(म्) भोगैर्जीवितेन वा।।1.32।।

हे कृष्ण! (मैं) न तो विजय चाहता हूँ, न राज्य (चाहता हूँ) और न सुखों को (ही चाहता हूँ)। हे गोविन्द! हम लोगों को राज्य से क्या लाभ? भोगों से (क्या लाभ)? अथवा जीने से (भी) क्या लाभ?

विवेचन:- अर्जुन कहते हैं कि हे कृष्ण! मुझे किसी प्रकार के सुख की कोई लालसा नहीं रही। अपने स्वजनों को मारकर प्राप्त किया गया राज्य हमारे लिए ना हितकारी है ना कल्याणकारी है। ऐसा राज्य का भोग मैं नहीं करना चाहता हूँ।

1.33

येषामर्थे काङ्क्षितं(न्) नो, राज्यं(म्) भोगाः(स्) सुखानि च।
त इमेऽवस्थिता युद्धे, प्राणांस्त्यक्त्वा धनानि च।।1.33।।

जिनके लिये हमारी राज्य, भोग और सुख की इच्छा है, वे (ही) ये सब (अपने) प्राणों की और धन की आशा का त्याग करके युद्ध में खड़े हैं।

विवेचन:- अर्जुन कहते हैं -मानव अपने जीवन में श्रेष्ठ सफलता प्राप्त करना चाहता है, श्रेष्ठ उपाधि प्राप्त करना चाहता है, जिससे उसके गुरूजन प्रसन्न हों। माता-पिता प्रसन्न हों। एक खिलाड़ी अपने खेल में जीत इसलिए प्राप्त करना चाहता है जिससे उसकी मातृभूमि का गौरव व सम्मान बढ़े। हम जीवन में सफलता चाहते हैं ताकि श्रेष्ठ स्नेहीजन प्रसन्न हों। परन्तु आज स्थिति विपरीत प्रतीत हो रही है। युद्ध में स्वजनों का वध करके मुझे किस प्रकार सुख की प्राप्ति होगी। वह अपने धन, अपने जीवन को हमारे भले के लिए त्याग कर हमारे सामने विरोधी सेना में खड़े हैं। हमारे कल्याण के लिए पितामह जिनके स्नेहाशीष में जिनके अंक में मैंने स्वर्णिम बचपन बिताया, गुरु द्रोणाचार्य के प्रति अर्जुन के मनोभावों को श्री ज्ञानेश्वर महाराज जी सुन्दर लेखनी से लिखते हैं कि

मी पार्थु द्रोणाचा केला, येणें धनुर्वेदु मज दिधला।
तेणें उपकारें काय आभारैला, वधीं तयातें ॥

अर्थात मैं पृथापुत्र बिल्कुल कोरा था, जिसने मुझे धनुर्विद्या में पारङ्गत बनाया वे गुरु द्रोण हैं। अर्जुन गुरु द्रोण के प्रिय शिष्य थे व सम्पूर्ण धनुर्विद्या उन्होंने गुरु द्रोण से ही प्राप्त की थी। ऐसे स्नेही स्वजनों, आत्मजों का वध करके सुख की प्राप्ति नहीं हो सकती।

1.34, 1.35

आचार्याः(फ्) पितरः(फ्) पुत्रास्, तथैव च पितामहाः।
मातुलाः(श्) श्वशुराः(फ्) पौत्राः(श्), श्यालाः(स्) सम्बन्धिनस्तथा।।1.34।।
एतान्न हन्तुमिच्छामि, घ्नतोऽपि मधुसूदन।
अपि त्रैलोक्यराज्यस्य, हेतोः(ख्) किं(न्) नु महीकृते।।1.35।।

आचार्य, पिता, पुत्र और उसी प्रकार पितामह, मामा, ससुर, पौत्र, साले तथा (अन्य जितने भी) सम्बन्धी हैं, (मुझ पर) प्रहार करने पर भी (मैं) इनको मारना नहीं चाहता, (और) हे मधुसूदन! (मुझे) त्रिलोकी का राज्य मिलता हो, तो भी (मैं इनको मारना नहीं चाहता), फिर पृथ्वी के लिये तो (मैं इनको मारूँ ही) क्या? (1.34-1.35)

विवेचन:-अर्जुन कहते हैं कि हे मधुसूदन! मैं अपने प्रियजनों, स्नेहीजनों को हानि नहीं पहुँचा सकता। यह तो केवल पृथ्वी की भूमि है वरन् सम्पूर्ण सृष्टि का तीनों लोकों का राज्य भी मुझे मिल जाए तब भी मैं अपने स्नेहीजनों को नहीं मार सकता। ज्ञानेश्वर महाराज जी अर्जुन और कृष्ण की इस संवाद का अत्यन्त ही सुन्दर चित्रण अपने शब्दों में इस प्रकार करते हैं-

पुत्रातें इच्छी कुळ । तयाचें कायि हेंचि फळ ।
जे निर्दळिजे केवळ । गोत्र आपुलें ॥ २१५ ॥

हर परिवार चाहता है कि मेरा वंशज कुल का नाम रोशन करने वाला हो। अर्जुन कहते हैं कि यदि मैं अपने स्वजनों का वध करूँगा तो मैं अपने कुल का भक्षक कहलाऊँगा। चाहे वे मेरा युद्धभूमि में वध भी कर दें। इस संसार में कोई भी अपने परिवार का अनिष्ट करने वाले को अपना पुत्र नहीं बनाना चाहता मैं अपने परिजनों की हत्या नहीं करना चाहता चाहे वे मुझे मार भी दें।

1.36

निहत्य धार्तराष्ट्रान्नः(ख्), का प्रीतिः(स्) स्याज्जनार्दन।
पापमेवाश्रयेदस्मान्, हत्वैतानाततायिनः।।1.36।।

हे जनार्दन! (इन) धृतराष्ट्र-सम्बन्धियों को मारकर हम लोगों को क्या प्रसन्नता होगी? इन आततायियों को मारने से तो हमें पाप ही लगेगा।

विवेचन:- कौन्तेय कहते हैं- हे जनार्दन! धृतराष्ट्र के पुत्रों की मृत्यु देखकर हमें किसी सुख की प्राप्ति की सम्भावना नहीं है। वरन् उनकी मृत्यु से तो हम पाप के भागीदार बनेंगे। गुरुदेव कहते हैं धर्म शास्त्र में कहा गया है कि - जो अधर्म के रास्ते पर चलते हैं उनको समाप्त करना ही क्षत्रिय का धर्म है।

वसिष्ठस्मृति में आततायी की छः प्रकार की परिभाषा बताई गई है-

- **आग लगानेवाला**
- **विष देनेवाला**
- **हाथ में शस्त्र लेकर मारने को उद्यत,**
- **धन का हरण करनेवाला**
- **किसी की जमीन को छीननेवाला**
- **स्त्री का हरण करनेवाला**

यह लक्षण यदि किसी व्यक्ति में दिखाई देते हैं तो वह आततायी ही कहलाते हैं व ऐसी आततायी को अवश्य समाप्त करना उचित है।

गुरुदेव के अनुसार -When crime is confirmed then Encounter is the solution.

अधर्मी लोग धर्म के मार्ग पर चलने वाले लोगों से छोटी सी त्रुटि होने पर भी उन्हें समझाते हैं कि आप ग़लत कर रहे हो ।जैसे कर्ण के रथ का पहिया भूमि में धँस गया (जिसका कारण कर्ण को मिला श्राप था) तब कर्ण अर्जुन से कहने लगे कि मैं निहत्था हूँ।अब तो तुम मुझ पर बाण नहीं चला सकते, यह अधर्म है। तब श्रीकृष्ण ने क्रमवार उन्हें याद दिलाया कि जब द्रोपदी का चीर हरण हुआ तब क्या वह ग़लत नहीं था? जब अभिमन्यु को निहत्था नीति विरुद्ध होकर मारा गया क्या वह उचित था? अतः धर्म की बातें कर्ण के मुँह से उचित नहीं लग रही थीं।

गुरुदेव सदैव कहते हैं कि यदि श्रीमद्भगवद्गीता हम पढ़ना चाहते हैं तब भगवान श्री कृष्ण के मन की भगवद्गीता ही पढ़नी चाहिए। महाभारत के परिपेक्ष्य को ध्यान में रखकर पढ़नी चाहिए ताकि सभी सिद्धान्तों को स्पष्ट समझ सकें।

1.37

तस्मान्नार्हा वयं(म्) हन्तुं(न्), धार्तराष्ट्रान्स्वबान्धवान्।
स्वजनं(म्) हि कथं(म्) हत्वा, सुखिनः(स्) स्याम माधव।।1.37।।

इसलिये अपने बान्धव (इन) धृतराष्ट्र-सम्बन्धियों को मारने के लिये हम योग्य नहीं हैं; क्योंकि हे माधव! अपने कुटुम्बियों को मारकर (हम) कैसे सुखी होंगे?

विवेचन-:अर्जुन अपने दृष्टिकोण प्रभु के समक्ष स्पष्ट करना चाह रहे हैं परन्तु श्री कृष्णा उनके किसी भी बात का समर्थन नहीं कर रहे हैं। सारी सेना उनके संवाद की ओर देख रही है। अभी तक अर्जुन भगवान से कुछ पूछ नहीं रहे हैं, प्रभु उनकी बातों का कोई भी उत्तर नहीं दे रहे हैं क्योंकि अभी तक अर्जुन उनके शिष्य नहीं बने हैं और न ही उनसे कुछ दिशा निर्देश चाह रहे हैं। वास्तव में इस समय भगवान श्रीकृष्ण मात्र एक सारथी की भूमिका निभा रहे हैं। अर्जुन कहते हैं कि अपने स्वजन धृतराष्ट्र पुत्रों को मारना हमारे लिए योग्य नहीं है।

1.38, 1.39

यद्यप्येते न पश्यन्ति, लोभोपहतचेतसः।
कुलक्षयकृतं(न्) दोषं(म्), मित्रद्रोहे च पातकम्।।1.38।।
कथं(न्) न ज्ञेयमस्माभिः(फ्), पापादस्मान्निवर्तितुम्।
कुलक्षयकृतं दोषं प्रपश्यद्भिर्जनार्दन।।1.39।।

यद्यपि लोभ के कारण जिनका विवेक-विचार लुप्त हो गया है, ऐसे ये (दुर्योधन आदि) कुल का नाश करने से होने वाले दोष को और मित्रों के साथ द्वेष करने से होने वाले पाप को नहीं देखते, (तो भी) हे जनार्दन! कुल का नाश करने से होने वाले दोष को ठीक-ठीक जानने वाले हम लोग इस पाप से निवृत्त होने का विचार क्यों न करें? (1.38-1.39)

विवेचन:- स्वजनों या मित्रों के साथ करने वाले दोष से जो पाप लगता है उसे समझ पाना भी असम्भव हो जाता है और उनका चित्त लोभ से भर जाता है। उनकी आँखों पर लालच की पट्टी बँध जाती है। अर्जुन कहते हैं- हे जनार्दन! हमें ज्ञात है कि कुल के नाश का भारी दोष लगता है। इस समय अर्जुन की मनोवैज्ञानिक दशा दो प्रकार की है। **साधक संजीवनी के अनुसार अर्जुन की यह मनोदशा भी एक दोष है।** वे जो धृतराष्ट्र के पुत्र हैं अनेकों विकार से ग्रसित हैं। जिसके कारण इन्होंने अनेकों अत्याचार किए हैं जैसे भीमसेन को विष देना, लाक्षागृह का प्रकरण, इन्द्रप्रस्थ नगरी को हड़पना। दयूत-क्रीड़ा का षड़यन्त्र, कुलवधू द्रोपदी का चीर-हरण आदि। धृतराष्ट्र पुत्रों का हृदय लोभ, से भरा हुआ था यह वचन इस बात का प्रमाण है कि अर्जुन स्वयं को धृतराष्ट्र पुत्रों से श्रेष्ठ मान रहे थे, जो की साधक संजीवनी के अनुसार एक प्रकार का दोष है। दूसरों को नीचा दिखाकर स्वयं को श्रेष्ठ मानना एक दोष होता है।

स्वामी विवेकानंद ने शिकागो, अमेरिका में सम्भाषण देना प्रारम्भ किया तब तालियों की गड़गड़ाहट लगातार पाँच मिनट

चलती रही। बहुत सारे अमेरिकी लोग उनके शिष्य बन गए। उनके प्रवचन जगह-जगह पर आयोजित होने लगे। एक जगह उनका प्रवचन आयोजित किया गया। स्वामी विवेकानंद जी वहाँ पहुँचे तब द्वारपाल ने उन्हें उनके श्यामल रंग को देखकर उन्हें एक नीग्रो यानी अश्वेत समझा व उन्हें भीतर जाने से मना कर दिया अश्वेत लोगों का वहाँ प्रवेश वर्जित था। स्वामी जी वापस चले गए स्वामी जी का उद्बोधन सुनने के लिए एकत्रित लोग मायूस हो गए। आयोजकों ने स्वामी जी से पूछा कि आप क्यों नहीं आए तब स्वामी जी ने बताया कि मैं तो आया था परन्तु मुझे आपके द्वारपाल ने भीतर नहीं आने दिया। आयोजकों ने कहा कि आपको द्वारपाल को कह देना चाहिए था कि आप नीग्रो नहीं है। स्वामी जी बोले नीग्रो लोगों को निम्न समझने के कारण ही द्वारपाल उन्हें अन्दर नहीं आने दिया। यदि मैं कहता कि मैं नीग्रो नहीं हूँ यह भी स्वयं को ऊँचा दिखाना होता। मैं किसी को नीचा दिखाकर स्वयं को ऊँचा नहीं दिखाना चाहता।

एक अन्य प्रसङ्ग में स्वामी जी ने राजविद्या, प्राणायाम, समाधि, अष्टाङ्ग योग आदि सिखाए और यह आग्रह किया कि यह विद्या बेची नहीं जाए। इसका व्यावसायिक उपयोग नहीं होगा। भारत में लौटने के बाद जब उन्हें यह ज्ञात हुआ कि उनके दो शिष्य व्यावसायिक रूप से धन कमाने के लिए इस विद्या का उपयोग कर रहे हैं उस समय भी उन पर क्रोधित ना होते हुए पत्र को सुनकर शिव-शिव का स्मरण करते हुए कल्याण हो कल्याण हो कहते हुए भीतर चले गए। यह प्रसङ्ग हमें सिखाता है कि **दूसरों के विकारों के बारे में सोचने मात्र से वह विकार हमारे भीतर भी प्रकट हो सकते हैं अतः दूसरों के दोषों का चिन्तन भी नहीं करना चाहिए।**

परंतु इस समय अर्जुन कौरवों को के दोषों का चिन्तन कर रहे हैं जो की सही नहीं था।

यहाँ अर्जुन पर एक मनोवैज्ञानिक दबाव है कि जिस प्रकार धृतराष्ट्र ने युद्ध आरम्भ होने के बाद सञ्जय को पाण्डवों पर दबाव डालने के लिए कहा कि मेरे पुत्र दुर्योधन दुःशासन और कौरव हठी है। परन्तु तुम तो पाण्डव के पुत्र हो, तुम कुन्ती माता के पुत्र हो तुम यह युद्ध टाल सकते हो। युद्ध के कारण कितनी हानि हो जाएगी, कुल की हानि हो जाएगी। पितरों पर संकट आएगा आदि बातें सञ्जय ने अपने स्वामी की अर्जुन व पाण्डवों को बताई। धृतराष्ट्र की यह योजना कुछ हद तक सफल भी रही। पाण्डवों में से तीन पाण्डव युद्ध के विरोधी हो गए। एक पाण्डव सहदेव युद्ध करने के पक्ष में थे व भीमसेन तटस्थ हो गए। तीनों पाण्डव धृतराष्ट्र की बातों से प्रभावित हो युद्ध के विरोधी हो गए। ऐसे समय पर प्रभु श्री कृष्णा धर्म के संस्थापना हेतु कार्य करना चाहते हैं परन्तु अर्जुन का मनोबल टूटता जा रहा था।

गुरुदेव कहते हैं कि यह वास्तव में वृत्तियों की लड़ाई है जिनकी वृत्तियां ग़लत होती है। वह सच्चाई के मार्ग पर चलने वाले अच्छे लोगों को भी प्रभावित करने का पूरा प्रयास करते हैं, और उनकी छोटी-छोटी ग़लतियाँ दोहराई जाती है। भले ही वह स्वयं गलतियों के पुतले हों परन्तु दूसरों की छोटी-छोटी ग़लतियाँ दोहरा कर उनका मनोबल कमजोर करते हैं। अगर अन्य के साथ कोई लड़ना भी चाहे तब भी वह उन्हें शिक्षा देंगे कि लड़ना सज्जनों का काम नहीं अच्छे लोगों को लड़ना नहीं चाहिए। अपने हक के लिए भी लड़ना नहीं चाहिए। इसलिये यह समाज अच्छे लोगों को निष्क्रिय बना देता है। स्वामी विवेकानन्द जी कहते हैं सतोगुण का नाम लेते-लेते यह सारा राष्ट्र तमोगुण में चला गया।अर्थात निष्क्रिय हो गया। इससे पहले उन्हें रजोगुणी बनाना चाहिए, पुरुषार्थ सीखना चाहिए। ऊर्जा - चेतना भरनी चाहिए। यह ऊर्जा हमें श्रीमद्भगवद्गीता से प्राप्त होती है। यह हमें मनोवैज्ञानिक वृत्तियों के प्रभाव से मुक्त करती हैं, मन में प्रेरणा भर देती हैं। अपने जीवन के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए मनुष्य को उत्साह से भर देती हैं। ऐसा सुन्दर मनोवैज्ञानिक ग्रंथ, परमात्मा व गुरुदेव की कृपा से हमें प्राप्त हुआ है। इसका शुद्ध उच्चारण करने का प्रयास कर के, कुछ श्लोक कण्ठस्थ करने का प्रयास करेंगे, विवेचन सुनकर व पढ़कर गुरुदेव की वाणी सुनकर सिद्धान्तों को ग्रहण करने का प्रयास करेंगे। अपने जीवन का उन्नयन करने का प्रयास करेंगे। अर्जुन के मनोभाव देखने का प्रयास करेंगे।

संत ज्ञानेश्वर जी महाराज कहते हैं :-

जरी वधु करोनि गोत्रजांचा । तरी वसौटा होऊनि दोषांचा ।
मज जोडिलासि तुं हातींचा । दूरी होसी ॥ २२८ ॥

म्हणोनि मी हें न करीं । इये संग्रामीं शस्त्र न धरीं ।

हें किडाळ बहुतीं परी । दिसतसे ॥ २३३ ॥

तुजसीं अंतराय होईल । मग सांगे आमुचें काय उरेल ? ।
तेणें दुःखें हियें फुटेल । तुजवीण कृष्णा ॥ २३४ ॥

यदि मैं अपने स्वजन और गोत्र जनों का वध करूंगा तो हे प्रभु! मैंने तुम्हें सखा मानकर अपने संग जोड़ा है। एक अक्षौहिणी सेना को तज कर आपका चयन किया है। मुझे आभास हो रहा है कि हम ग़लत मार्ग से अपना राज्य प्राप्त करने का प्रयास कर रहे हैं। मुझे लगता है कि राज्य प्राप्त करने का हमारा मार्ग सही नहीं है। इससे आप मुझसे दूर हो जाएँगे यह मैं सहन नहीं कर पाऊँगा। मैंने अपने जीवन में सभी गुण जैसे धनुर्विद्या का प्रयास, आत्मतत्व की प्राप्ति का प्रयास इसलिए किया ताकि मैं आपको प्राप्त कर सकूँ। आपके जाने के बाद कुछ भी प्राप्त होना सम्भव नहीं है। यह भाव अर्जुन के मन की व्यथा को पूर्णता स्पष्ट करते हैं। आपके बिना जीवन सम्भव नहीं है इस युद्ध से पाप लगेगा। अपने जीवन में कर्म करते समय मनुष्य को कई बार कुछ कठोर निर्णय भी देने पड़ते हैं। जो अत्यधिक आवश्यक होते हैं। जैसे एक वधिक (जल्लाद) किसी कैदी को फाँसी देता है, वह अपना कर्तव्य पालन करता है, न्यायालय के निर्णय का मान करता है। अत: उसे किसी प्रकार का दोष नहीं लगेगा।

अर्जुन तुम यह युद्ध धर्म की स्थापना के लिए कर रहे हो, जगत के कल्याण के लिए कर रहे हो परमात्मा के लिए कर रहे हो। कर्म करते समय मन के विचार बदल कर कर्म करने से उस कर्म में जो भी दोष है मनुष्य उससे मुक्त हो जाता है। यही उत्तम शिक्षा हमें श्रीमद्भगवद्गीता से निरन्तर प्राप्त होती है।

विचार मंथन (प्रश्नोत्तर):-

प्रश्नकर्ता : **स्मिता दीदी**

प्रश्न : मैंने कर्ण के ऊपर दो पुस्तक पढ़ी है राधेय एवं मृत्युंजय उसमें कर्ण को काफी अलग ढंग से प्रस्तुत किया गया है परन्तु महाभारत में कर्ण को अलग दिखाया गया है।

उत्तर : वास्तव में महर्षि वेदव्यास जी ने दुर्योधन, शकुनी, कर्ण और दुःशासन को चाण्डाल चौकड़ी कहा है। यह रात दिन बैठकर षड़यन्त्र करते रहते हैं की पाण्डवों को कैसे हानि पहुँचाई जाए। इन सभी कर्मों में कर्ण सम्मिलित थे क्योंकि उनकी स्वयं की महत्वाकांक्षाएँ थीं। अतः इन पुस्तकों में उनके अवगुणों को छुपाते हुए प्रस्तुत किया गया। जिसने कुलवधू द्रौपदी को वेश्या कहा और जिसने चीर हरण की सर्वप्रथम सूचना दी वह व्यक्ति दुर्गुणों से भरा हुआ है। वह दानी था, पराक्रमी था, परन्तु उन्होंने सदैव गलत रास्ते का अनुसरण किया कभी भी दुर्योधन को सुधारने का प्रयास नहीं किया। अर्जुन से तो उसकी तुलना ही नहीं की जा सकती।

प्रश्नकर्ताः नीना दीदी

प्रश्न :- श्रीमद्भगवद्गीता और भागवत् में क्या अन्तर है?

उत्तर :- हमारे विभिन्न ग्रन्थ जैसे रामायण जो कि महर्षि वाल्मीकि जी द्वारा रचित है और दूसरी है महाभारत जो कि महर्षि वेदव्यास जी द्वारा रचित है। उन्होंने इस पूर्ण ग्रन्थ को संपादित किया है। उसी का एक अंश हैं श्रीमद्भगवद्गीता। महाभारत में एक लाख श्लोक हैं श्रीमद्भगवद्गीता में साात सौ श्लोक हैं। श्रीमद्भगवद्गीता श्री कृष्ण द्वारा अर्जुन को युद्धभूमि में दिया गया उपदेश है। **भागवत्**- भगवान के अवतारों का वर्णन है, भगवान के दशावतारों का वर्णन भागवत में आया है। श्री कृष्ण महाभारत का भी कुछ अंश भागवत में आया है परन्तु भागवत् में भगवान की दशावतारों का वर्णन आया है। श्रीकृष्ण के अवतार का वर्णन ग्यारहवें स्कन्द में किया गया है। इन तीनों ग्रन्थ में मुख्य अन्तर बताते हुए गुरुदेव कहते हैं की **रामायण** से हमें नीति सीखनी चाहिए, भगवान राम के गुण सीखने चाहिए। **महाभारत** से युक्ति सीखनी चाहिए, किस प्रकार विजय प्राप्त करनी है। वह हमारे जीवन को विजय की ओर ले जा सकती है। **भागवत्** से हमारे जीवन में भक्ति अवतरित होती है। भागवत से हमें जीवन में भक्ति सीखनी चाहिए। **एक राम कथा है, दूसरी कृष्ण कथा है और तीसरी हरि कथा है।**

प्रश्नकर्ता:- **सपना दीदी**

प्रश्न - युद्ध महाभारत का धर्म की स्थापना के लिए किया गया परन्तु भगवान जानते थे कि इसमें धर्म की रक्षा करने वालों का भी वध हुआ था तब प्रभु ने कुछ क्यों नहीं किया?

उत्तर :- भगवान जो भी करते हैं वह मनुष्य के माध्यम से करते हैं। भगवान जो निर्गुण निराकार है वह सगुण साकार बनकर आते हैं। परन्तु उनके सहयोग के लिए भी सेना आवश्यक है। जब श्री राम जी आए उनके साथ वानर सेना थी और उन्होंने रावण पर विजय प्राप्त की। वैसे ही यहाँ पर भगवान को माध्यम की आवश्यकता थी जैसे घर में विद्युत आती है, तो उपयोग के अनुसार उपकरण अलग-अलग होते हैं। हवा के लिए पंखे का प्रयोग किया जाता है, ज्यादा ठण्डक के लिए एसी का उपयोग किया जाता है उसी प्रकार भगवान जब भी कोई कार्य करते हैं तो उसके लिए वह निमित्त माध्यम का चयन करते हैं। जैसे धर्म संस्थापना की लड़ाई कौरव व पाण्डव के माध्यम से की गई। इस युद्ध में जो अधर्म के साथ थे वह मारे गए, परन्तु जो धर्म के साथ है उनकी भी कुछ हानि होती है। जब श्री शिवाजी महाराज ने मुगलों के साथ लड़ाई की तब उनके सहयोगी जैसे ताना जी आदि को वीरगति प्राप्त हुई।

प्रश्नकर्ता: **लक्ष्मी नरसिम्हा राव भैया**

प्रश्न :-अपने तीन 'द' का वर्णन किया है दया दान और दमन। दमन के बारे में कुछ बताइए।

उत्तर :- शमन और दमन, शमन का सम्बन्ध है मन से और दमन का सम्बन्ध है इन्द्रियों से, हमारी इन्द्रियाँ निरन्तर भोग चाहती हैं। जैसे आँखें देखने का, कान सुनने का, जीभ रस का, त्वचा स्पर्श का भोग चाहती है। इन पर नियन्त्रण करना कहलाता है दमन। उदाहरण व्रत करने से जीभ पर नियन्त्रण होता है। परीक्षा तक टीवी नहीं देखना आदि दमन के उदाहरण हैं। इसके लिए भी शक्ति चाहिए होती है। ऐश्वर्य से दूर रहकर भी जीवन जीने की कला हमें आनी चाहिए। ऐसे ऐश्वर्य सम्पन्न देवताओं के लिए या फिर ऐश्वर्य सम्पन्न मनुष्य को दमन के लिए कहा गया है। मनुष्य के लिए दान, कहा गया है जिससे हमारे सम्पत्ति का शुद्धिकरण होता है। जो ग़लत मार्ग पर हैं बलशाली हैं वे बल के कारण अत्याचार करते हैं उन्हें दया अपनाने को कहा गया है ताकि वे अपनी शक्ति का प्रयोग गलत कार्य में न करके अच्छे कार्य में करें।

।।श्री कृष्णार्पणमस्तु।।

हमें विश्वास है कि आपको विवेचन की रचना पढ़कर अच्छा लगा होगा। कृपया नीचे दिए लिंक का उपयोग करके हमें अपनी प्रतिक्रिया दीजिए।

https://vivechan.learngeeta.com/feedback/

विवेचन-सार आपने पढ़ा, धन्यवाद!
हम सब गीता सेवी, अनन्य भाव से प्रयास करते हैं कि विवेचन के अंश आप तक शुद्ध वर्तनी में पहुंचे। इसके बाद भी वर्तनी या भाषा संबंधी किन्हीं त्रुटियों के लिए हम क्षमा प्रार्थी हैं।

जय श्री कृष्ण !

संकलन: गीता परिवार - रचनात्मक लेखन विभाग

हर घर गीता, हर कर गीता!

आइये हम सब गीता परिवार के इस ध्येय से जुड़ जायें, और अपने इष्ट-मित्र -परिचितों को गीता कक्षा का उपहार दें।

https://gift.learngeeta.com/

गीता परिवार ने एक नवीन पहल की है। अब आप पूर्व में सञ्चालित हुए सभी विवेचनों कि यूट्यूब विडियो एवं पीडीऍफ़ को देख एवं पढ़ सकते हैं। कृपया नीचे दी गयी लिंक का उपयोग करे।

https://vivechan.learngeeta.com/

|| गीता पढ़े, पढ़ायें, जीवन में लाये ||

||ॐ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ||